कमलेश्वर की कहानियों में ग्रामीण परिवेश का वस्तुगत : एक अध्ययन

राघवेंद्र सिंह,
शोधार्थी,
हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,लखनऊ (उ0प्र0)

डॉ0 प्रमोद कुमार सिंह,
एसोसिएट प्रोफेसर,
हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,लखनऊ (उ0प्र0)

शोध सारांश

'कमलेश्वर की नयी कहानी आन्दोलन इतना शक्तिशाली और रचनात्मकता से परिपूर्ण था कि बेहद कम समय में ही इसने कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, मधुकर गंगाधर, निर्मल वर्मा, शिव प्रसाद सिंह, मार्कण्डेय, अमरकांत, फणीश्वरनाथ रेणु, मन्नू भण्डारी, ममता कालिया, कृष्णा सोबती, हरिशंकर परसाई, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना जैसे महत्वपूर्ण कहानीकार दिए। 1940—50 के बीच का दशक जहाँ इतना अधिक अनुर्वर था कि कहानी दिशाहीन सी प्रतीत होती थी वहीं स्वतंत्रता के बाद ऊपजी परिस्थितियों ने नयी कहानी को जन्म दिया जो नयी संवेदना और नया शिल्प लेकर आया। इस आन्दोलन का प्रभाव इतना गहरा था कि कहानी केन्द्रित कई पत्रिकाएँ निकलीं, आलोचक कहानी को हाशिए से उठाकर मुख्यधारा में विवेचन करने को बाध्य हुए और कवियों ने भी यथा— रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना आदि ने भी कहानियाँ लिखीं।

Keywords: *कमलेश्वर की कहानियाँ,आधुनिक बोध, नयी कहानी,ग्रामीण परिवेश,वस्तुगत अध्ययन,*

कमलेश्वर की कहानियाँ जिन्दगी से सीधा साक्षात्कार करती हैं। वे जिन्दगी से हटकर कहानी लिखने को लिखने के धर्म के प्रति बेईमानी कहते हैं। डॉ0 सुरेश सिन्हा की स्पष्ट मान्यता है, ''घोर आत्मपरकता, कुण्ठा, घुटन एवं पलायनवादी प्रवृत्ति के घने जाल से हिन्दी कहानी को खुले वातावरण में लाकर नया अर्थ देने का श्रेय बहुत अंशों में कमलेश्वर को है।''[1] कहानियाँ कमलेश्वर के लिए ''मूलतः असहमति का माध्यम रही हैं।''[2] 'मनुष्य के लिए राजनीति' में विश्वास रखता हूँ 'राजनीति के लिए मनुष्य' में नहीं।''[3] जाहिर है कि कमलेश्वर की कहानियों का केन्द्र बिन्दु मनुष्य और जटिलताओं से भरा मनुष्य का जीवन है। सामाजिकता और सोद्देश्यता उनकी कहानियों की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

कमलेश्वर आधुनिक बोध के कहानीकार हैं। आधुनिक बोध नयी कहानी की प्रमुख विशेषता भी है। इन्द्रनाथ मदान ने लिखा है, ''कमलेश्वर की कहानी में भी आधुनिकता की प्रक्रिया देशगत आयामों को लिए हुए है—वह चाहे 'खोई हुई दिशाएँ' में हो या 'रूकी हुई घड़ी', 'दुःख के रास्ते', या 'जो लिखा नहीं जाता।''[4] यह आधुनिकता कमलेश्वर के यहाँ सहज बोध से सम्पृक्त है और जीवन मूल्य के रूप में आई है। उन्हें ओढ़ी गई नकली आधुनिकता से चिढ़ है।

जीवन के प्रति प्रतिबद्धता और यथार्थ का आग्रह कमलेश्वर के कहानियों का प्रमुख स्वर है। डॉ0 सुरेश सिन्हा का मानना है, ''जिन्दगी की यथार्थता के पर्दे उधेड़ने में उन्होंने निर्ममता से

काम लिया है और प्रत्येक सामाजिक स्थिति का चित्रण करने का प्रयत्न किया है।

कमलेश्वर की कहानियों में स्त्री–पुरुष सम्बन्धों का यथार्थपरक चित्रण मिलता है। आधुनिकता के बोध से और आर्थिक सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन की वजह से पारिवारिक संरचना में बुनियादी बदलाव आए हैं। स्त्री–पुरुष दोनों के सोचने–समझने और क्रिया–व्यापार में परिवर्तन आया है। इस परिवर्तन से सामाजिक ढाँचा बदल सा गया है जिसकी सशक्त अभिव्यक्ति कमलेश्वर के यहाँ मिलती है। बदले परिवेश में स्त्री–पुरुष की दासी नहीं बल्कि सहकर्मिणी है और इस प्रक्रिया में उसने पुरुष के तमाम पारम्परिक अधिकारों को चुनौती दी है। पति और पत्नी के बीच 'तीसरे' की उपस्थिति का अहसास कमलेश्वर के यहाँ सशरीर एवं अशरीर, उभय परिस्थितियों में है।

ग्रामीण परिवेश

कमलेश्वर की कहानियाँ जीवन से जुड़ी कहानियाँ हैं। यह जीवन कस्बाई और नगरीय परिवेश का है। नयी कहानी की प्रमुख विशेषताओं में एक विशेषता यह भी है कि उसका परिवेश ग्रामीण है। एक अन्य धारा के रचनाकार नगरीय जीवन की कथा बुनते हैं। अमरकान्त, शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय, रेणु आदि जहाँ ग्रामीण जीवन के चित्रकार हैं वहीं राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, मन्नू भण्डारी, मधुकर गंगाधर, निर्मल वर्मा, शेखर जोशी नगरीय जीवन को चित्रित करते हैं। जैसा कि कमलेश्वर ने स्वीकार किया है, प्रथम चरण की कहानियों का परिवेश ग्रामीण एवं कस्बाई जीवन से सम्बद्ध है। यह प्रथम चरण मैनपुरी से इलाहाबाद तक के प्रवास से बना है। इसका कार्यकाल 1959 ई0 में पूरा होता है। कमलेश्वर की कहानियों की चर्चा करते हुए धनंजय वर्मा लिखते हैं– ''आप ऐसे आदमी की कल्पना कीजिए जो गाँव से कस्बे और फिर कस्बे से नगर या महानगर पहुँचता है, तो आपको उसके भीतर और उसके बाहर होने वाले विकास और उसके रूपान्तरण का कुछ अक्स अपने ज़हन में उभरता मिलेगा।

कमलेश्वर की प्रारम्भिक कहानियों में कस्बाई जीवन अपने सम्पूर्ण सत्य शक्ति के साथ व्यंजित हुआ है। ऐसी कहानियाँ अधिक व्यापक और समृद्ध हैं। जिस कस्बे की ये कहानियाँ हैं वहाँ के हर रंग, जिन्दगी के हर पहलू को कहानीकार ने आत्मीयता से देखा–पहचाना है। 'कस्बे' की कहानियाँ होने से ही इनकी 'व्यापकता' में कोई बाधा नहीं आती, बल्कि ये अधिक प्रामाणिक और संवेदनात्मक हो जाती हैं।''[5] बहुत मोटे तौर पर कमलेश्वर की कहानियों को दो हिस्सों में विभाजित किया जाता है– ''कस्बे की कहानियाँ और महानगरीय कहानियाँ। इनका बचपन कस्बे की गोद में बीता है, और इसी कारण इनकी प्रारम्भिक कहानियाँ कस्बे की कहानियाँ हैं। कस्बे की मानसिकता संक्रमणकालीन मानसिकता होती है। गाँव से उसके पाँव कट चुके होते हैं और शहर उसे अपने में समेटता नहीं है। कस्बे के आदमी में जहाँ एक ओर शहर की चालाकी होती है वहीं कहीं गँवई गाँव की मासूमियत भी। कस्बे की समस्याएँ भी कितनी भिन्न होती हैं।''[6]

कमलेश्वर की पहली कहानी के तौर पर मान्यता प्राप्त 'कामरेड' (1946 ई0, मैनपुरी) का परिवेश भी कस्बाई है जहाँ हर रोज की गतिविधियाँ अपने नियत कार्यक्रम से सम्पन्न होती हैं। ''धर्मशाला में चहल पहल आरम्भ हो गई थी। नुक्कड़ के मिठाईवाले ने पत्थर के कोयले की अंगीठी सुलगाकर, जलेबी बनाने के लिए कड़ाही चढ़ाकर डालडा का पीपा उलट दिया था। पास बैठा, मैला सा अँगोछा लपेटे नौकर बासी चाशनी में पड़े चींटे और मक्खियाँ बीन–बीन कर फेंक

रहा था, पर हमारे कामरेड बारजे के एक पतले कोने में चादर लपेटे अच्छा खासा पार्सल बने अपनी पाँचवीं नींद पूरी कर रहे थे।''[7] ऐसे ही वातावरण में कामरेड की जिन्दगी व्यतीत होती है। अपने बुनियादी स्वभाव में वह बुर्जुआजी शोषक है। वह न सिर्फ रिक्शेवाले को कम पैसे देता है अपितु गरीबी पर हिकारतपूर्ण व्यंग्य करता है। रिक्शेवाले के साथ कामरेड की बातचीत से उसकी मानसिकता का सहज उद्‌घाटन होता है—

''रिक्शा किया, प्रेस पहुँचे। रिक्शेवाले को रूपये का नोट देते बोले— ''लाओ ग्यारह आने लौटाओ।''

''बाबू आठ आने हुए यहाँ तक के।''

''शर्म नहीं—आती आठ आना माँगते, कुल दो मील तो प्रेस है,.........लाओ ग्यारह आने वापिस करो, टकसाल है जो पैसे बना—बनाकर तुम्हें लुटाया करूँ।''

''आठ आना मजूरी है बाबू..........कोई ज्यादा नहीं माँगे।''

''अच्छा—अच्छा ला, दस आने लौटाल।''

''बड़े जालिम हो बाबू, गरीब का पेट काटते हो।'' रिक्शेवाले ने पैसे देते हुए कहा।

''गरीब में सौ मन चर्बी होती है।''......... और पैसे गिनते—गिनते कामरेड प्रेस में घुस गए।''[8] कामरेड फर्जीवाड़े में गिरफ्तार होता है किन्तु इस फर्जीवाड़े को गरीबों के हित से जोड़ देता है। वह शातिराना तरीके से रिक्शा यूनियन बनाता है। गिरफ्तार होकर जाते हुए वह एक रिक्शावाले की जिज्ञासा के जवाब में कहता है— ''अरे भाई गरीबों के लिए जो बोलता है उसका यही हाल होता है, मैं गरीबों के लिए बोला, यह अंजाम मिला, परन्तु चिन्ता नहीं, गरीबों को मिले रोटी तो मेरी जान सस्ती है........लाल हिन्द जिन्दाबाद।''[9]

'माटी सुबरन बसाय' (1948 ई0) में कृषक जीवन की बेचारगी एवं त्रासदी चित्रित है। इस कहानी में ग्रामीण जीवन प्रामाणिक रूप से चित्रित हुआ है। कहानी का आरम्भ भी पारम्परिक किस्सागोई वाले अंदाज में होता है— ''हरखू की चौपाल में अच्छा खासा मजमा जमा था। दो—एक असम्माननीय बूढ़ों के अतिरिक्त मुख्यतः जवानों का ही जमघट था। यह छोटा सा गाँव रोज सूरज से पहले जागता और चाँद से पहले चौपाल में जमा हो जाता। लेकिन आज तो इस जमाव में एक नई जमीन आ गई थी। बात यह थी कि बराबर वाले गाँव की पतुरिया 'चन्दो' आज इस गाँव के रास्ते बैलगाड़ी से जा रही थी कि अचानक किसी की नजर उस पर पड़ ही तो गई। बस, रोक लिया गया उसे आज भर को।''[10]

कमलेश्वर की यह कहानी प्रेमचन्द की प्रसिद्ध कहानी 'कफन' का विस्तार है जिसमें लाखन पटवारी, मुंशी, वैद्यजी गोकि ग्रामीण शोषण के दुष्चक्र में फँस जाता है। अपनी लहलहाती फसल को देखकर उसे हर्ष नहीं होता बल्कि चिन्ताएँ प्रभावी होती जाती हैं— ''उसकी नजर खेत पर टिक गई, फसल अच्छी है पर रूपया अभी तो नहीं मिल सकता। अभी कटाई बाकी है, फिर दाँय चलेगी और तब कहीं फटककर सोना अलग होगा। कम से कम पन्द्रह दिन तो लग ही जाएंगे, पर पन्द्रह दिन हैं— पन्द्रह साल। उसे पैसा आज चाहिए, पन्द्रह दिन बाद नहीं। वह आज भूखा है, इस समय भूखा है।''[11] पटवारी से उसका पुराना वैर उसकी फसल लील लेती है क्योंकि हरकारा जो नोटिस उसे थमाता है चन्दो को नाचता देख जब पटवारी सिक्के उछालता है, लाखन ताबीज बेचकर जुटाए गए पैसे हिकारत से भरकर चन्दो की ओर उछाल देता है। कहानी कफन का विस्तार है जहाँ घीसू—माधव व्यवस्था के कारण दुष्चक्र से अमानवीयता को हद तक निर्मम हो गए हैं। डॉ0 चन्द्रशेखर कर्ण की स्पष्ट मान्यता है— ''कमलेश्वर की कहानियों का

समझदार पाठक मेरी इस बात से कभी चौंकेगा नहीं कि वे प्रेमचन्द परम्परा की विकसित उपलब्धि हैं। यह इस मायने में कि उनका रचना संसार हमारा परिचित तो है ही, हम उससे अपने को जुड़ा भी पाते हैं। उनकी कहानियों का आत्मीय परिवेश पाठकों को अंत तक बाँधता है।''[12]

सन् 1950 में लिखी कहानी 'जन्म' में बेटे–बेटी के जन्म लेने पर घर के वातावरण में आ रहे बदलाव को विषय वस्तु बनाया गया है। चन्दू मुंशी का परिवार भी ग्राम और कस्बे की मानसिकता वाला परिवार है जहाँ लड़कियों को बोझ और लड़कों को कुलदीपक माना जाता है। चन्दू की पत्नी अपने शुरूआती दिनों में तो खूब आदर पाती हैं किन्तु जैसे–तैसे तीन बेटियों की माँ बन जाने और सातवाँ बच्चा जनते हुए वह घोर उपेक्षित होती है। यहाँ तक कि प्रसव के समय दादी अपनी रौ में भुनभुनाती हैं– ''अब आधी रात में क्या होगा? मेरे तो प्रान सूख रहे हैं। वैसे ही तीन–तीन लड़कियों का बोझ है।.........इतनों का पूरा नहीं पड़ता और यहाँ रोज यही लगा है। घर न हुआ जच्चा खाना हो गया......।''[13] किन्तु जब आने वाली संतान के लड़का होने का पता चलता है वे प्रसन्न हो जाती हैं। कमलेश्वर ने लिखा है– ''बाबा ने पूछा– ''क्या है ?'' ''कानी लड़की।'' ''दादी ने खुशी से भरी आवाज में कहा और बाबा का मुँह ताकने लगी, जिस पर कालिख फैल रही थी। फिर आनन्द से छल–छलाती आवाज में बोलीं, ''लड़का हुआ है चन्द्रमा जैसा।''[14] फिर उन्हीं दादी की व्यस्तताएँ बढ़ जाती हैं। वे आह्लाद में चीखती हैं– ''कमलिया उठ दरवाजे पर थापे लगा।.........देहरी पर गन्धक जला।.......उठ।.........और देख जरा काँसे की थाली बजा दे........तेरे भैया हुआ है।''[15]

मैनपुरी के बाद इलाहाबाद आगमन के अनन्तर कमलेश्वर की कहानियों का स्वर परिवर्तित होता है। यह ग्रामीण एवं कस्बाई जीवन से नगरीय जीवन की ओर संक्रमण है। इलाहाबाद प्रवास के दौरान कमलेश्वर ने जो कहानियाँ लिखीं उनमें भी उनका ग्रामीण एवं कस्बाई मानस प्रभावशाली अंदाज में अभिव्यक्ति हुआ। धनंजय वर्मा ने इस संक्रमण को कमलेश्वर की कहानियों में लक्षित किया है। वे इस संक्रमण को मानसिक विनिर्माण की प्रक्रिया के तौर पर देखते हैं जिसका उल्लेख किया जा चुका है।[16] वे रेखांकित करते हैं कि इस संक्रमण से चीजें बदल जाती हैं। वे लिखते हैं, ''नए परिवेश में आकर रिश्ते भी रिश्ते नहीं रह जाते, एक औपचारिकता उनकी जगह ले लेती है। सारे इन्सानी रिश्तों में एक ठण्डापन आ जाता है। 'कस्बे का आदमी' 'दिल्ली में एक मौत' झेलता है। 'इन्सान और हैवान' का फर्क नजर नहीं आता। 'भटके हुए लोग' 'सीखचों' में कैद हो जाते हैं या 'मुर्दों की दुनिया' में 'फालतू आदमी' की तरह 'खोयी हुई दिशाओं' में भटकते हुए 'दुखों के रास्ते' पर चले जाते हैं।''[17]

इलाहाबाद में आकर कमलेश्वर के यहाँ कस्बाई परिवेश और भी जीवन्त हुआ है। उसके, चित्रण में अब ठहराव नहीं है बल्कि संक्रमणशील होने के कारण यह गत्यात्मक हो गया है। जीवन का द्वन्द्व विस्तार पा गया है और नगरीय जीवन के परिवेश से सहज ही विशिष्ट हो गया है। 'गाय की चोरी' (1951) के वातावरण में ''सभी अपनी–अपनी तरह से जी रहे हैं, कभी बड़े से बड़े मसले सामने आते हैं तो सभी इस तरह टाल जाते हैं जैसे कोई पतंग कट गयी हो। और कभी छोटी से छोटी बात में इस तरह उलझ पड़ते हैं जैसे जिन्दगी और मौत का सवाल हो। इस गली की जिन्दादिली के केन्द्र हैं, बिगड़े हुए जमींदार मुंशी प्यारेलाल। जो सिर्फ दो बातें बर्दाश्त नहीं कर सकते। एक तो यह कि कोई उनकी बात पर यकीन न करे, और दूसरी यह कि इस छोटे से कस्बेनुमा शहर की कोई हलचल उनके अनजाने में हो जाए।''[18] ऐसे वातावरण में मुंशीजी का व्यक्तित्व जब शक के दायरे में आ जाता है और वे एक झूठ की वजह से जब हिकारत से देखे

जाने लगते हैं तो जानपर खेलकर फौजदारी करके अपनी शान की रक्षा करते हैं। यह सामन्ती स्वभाव के परिष्कृत, सर्वथा नवीनीकृत प्रारूप का उदाहरण है जो ग्रामीण और कस्बाई परिवेश की विशिष्टता है। मुंशीजी जिस डींग को लगातार हाँकते थे उसे वक्त पर करके दिखाने का उनका साहस उन्हें विशिष्ट बनाता है और कहानी को जीवन्त। गाय की बरामदगी से जो आत्मविश्वास और साहस मुंशीजी में आता है वह भोगे हुए कष्ट और किए गए पुरूषार्थ से अर्जित है। तभी वे कहने में सक्षम हो सके थे कि, ''पुलिस भला क्या कर सकती थी? मैं तो पहले ही जानता था जो काम करना हो अपने बूते उठाना चाहिए।''[19] चूंकि इस घटना में मुंशी जी की सत्यता थी अतः ''कहते–कहते उन्होने अपनी बाँहें खोल दी थी जो आज सचमुच लाठियों की मार से सूजी हुई थी।''[20] 'गाय की चोरी' कहानी जिन सहज स्थितियों से विडम्बनात्मक होती जाती है वह महत्त्वपूर्ण है। यह कस्बाई जीवन मूल्य ही है कि मुंशी जी 'झूठा' कहे जाने से व्यथित हो जाते हैं। उनकी आत्मग्लानि शुद्ध कस्बाई है। कमलेश्वर इसी प्रामाणिक अंकन से कस्बाई कथाकार बनते हैं।

कमलेश्वर की 1954 ई0 में लिखी एक कहानी 'गर्मियों के दिन' का आरम्भ कस्बाई जीवन के चित्रांकन से ही होता है– ''चुंगी दफ्तर खूब रँगा–चुँगा है। उसके फाटक पर इन्द्रधनुषी आकार के बोर्ड लगे हुए हैं। सैय्यद अली पेण्टर ने बड़े सधे हाथ से उन बोर्डों को बनाया है। देखते–देखते शहर में बहुत सी ऐसी दुकानें हो गई है जिन पर साइन बोर्ड लटक गई है। साइन बोर्ड लगाना यानी औकात का बढ़ना।''[21] यह कहानी आगे बढ़ती है और वैद्यजी के व्यवहार के सूक्ष्म चित्रण से कस्बाई परिवेश को सम्पूर्णता से उभारती है। जो वैद्यजी बदलते संक्रमणशील व्यवहार के आलोचक हैं, वही स्वयं को भी उसी परिवेश से तादात्म्य बिठाने के लिए प्रयासरत हैं। इस प्रक्रिया में उनका व्यवहार हास्यास्पद हो जाता है।

''चन्दर कुछ ऊब रहा था। ख्वामखाह पकड़ गया........बोला, ''किसी पेण्टर से बनवाते....... ..अच्छा–खासा लिख देता, वो बात नहीं आएगी।''[22] कहानी में गर्मियों का मौसम है और दोपहर का समय। ऐसे ही ऊबते और संक्रमित होते वातावरण में वैद्यजी जब खाली समय में खसरा–खतौनी से नकल करते हैं, एक खलासी 'डाकटरी सर्टिफिकेट' के लिए आता है। वैद्यजी 'पक्का' करके देने के चार रूपये माँगते है। सौदा पटता नहीं। ''रेलवे का खलासी एक मिनट तक बैठा कुछ सोचता रहा। और वैद्यजी को सिर झुकाए अपने काम में मशगूल देख दुकान से नीचे उतर गया। एक दम वैद्यजी ने अपनी गलती महसूस की, लगा कि उन्होंने बात गलत जगह तोड़ दी और ऐसी तोड़ी कि टूट ही गई।''[23] कहानी का अंत अंतहीन इंतजार में होता है। वैद्यजी को इंतजार है कि खलासी आएगा क्योंकि ''गाँववालों की मुर्री जरा मुश्किल से खुलती है। कहीं बैठ के सोचे–समझेगा, तब आएगा... ।''[24] और अन्तहीन इंतजार हताशा में बदल जाता है। वे दोपहर को घर भी नहीं जाते। बच्चन लाल जब दोपहर बिताकर वापस आता है तो वैद्यजी इन्तजार में बैठे पसीना पोंछते रहते हैं। 'गर्मियों के दिन' कहानी अपने समग्र में कस्बाई जीवन के संक्रमित जीवन को बहुत यथार्थपरक ढंग से चित्रित करती है। इसी प्रकार कमलेश्वर की बहुचर्चित कहानी 'राजा निरबंसिया' का परिवेश भी ग्रामीण एवं कस्बाई है। 'राजा निरबंसिया' का आरम्भ लोक कथा के प्रविधि से होता है– ''एक राजा निरबंसिया थे', 'माँ कहानी सुनाया करती थीं। उनके आस–पास ही चार–पाँच बच्चे अपनी मुठ्ठियों में फूल दबाए कहानी समाप्त होने पर गौरों पर चढ़ाने के लिए उत्सुक से बैठ जाते थे। आटे का सुन्दर सा चौक पुरा होता, इसी चौक पर मिट्टी की छः गौरें रखी जातीं, जिनमें से ऊपरवाली के बिन्दिया और सिन्दूर लगता, बाकी

पाँचों नीचे दबी पूजा ग्रहण करती रहतीं।''[25] कहानी का प्रमुख पात्र जगपती और चन्दा का जीवन इसी कस्बे में नवीनतम स्थितियों से गुजरता है। जगपती और चन्दा के प्रेमकथा में बचन सिंह कम्पाउडर का प्रवेश इसी कस्बाई जीवन की विडम्बनात्मक स्थितियों की सूचना देता है। कहानी में कस्बाई परिवेश को सीधे–सीधे कहा गया है– ''कस्बे का अस्पताल था। कम्पाउन्डर ही मरीजों की देखभाल करते थे। बड़ा डॉक्टर तो नाम के लिए था या कस्बे के बड़े आदमियों के लिए। छोटे लोगों के लिए तो कम्पोटर साहब ही ईश्वर के अवतार थे।''[26] ऐसे ही कस्बाई परिवेश में दुहरे शिल्प वाली यह कहानी आगे बढ़ती है। चन्दा बचन सिंह की रखैल बन जाती है और जगपती आत्महत्या के लिए मजबूर हो जाता है।

कमलेश्वर की कस्बाई जीवन से लिए गए कथानक से बुनी गई कहानी 'देवा की माँ' (1955) की चर्चा 'नयी कहानी' के रूप में होती है। देवा की माँ परित्यकता है। कठिन परिस्थितियों में भी वे पति से परवरिश हेतु रकम लेने को तैयार न हुई थी। कई प्रकार कष्ट सहते हुए देवा की माँ ने पति के प्रति मोह त्याग दिया था। परिणामस्वरूप जब देवा एक बार पिता के बीमार होने और अस्पताल में भरती होने का समाचार देता है तो भी वे प्रकृत रहती हैं– ''खाते–खाते देवा ने कहा, ''बाबूजी अस्पताल में है।'' ''क्या हुआ?'' माँ के चेहरे पर सब प्रकृत था।''[27] वे देबू यानी देवा के इस प्रस्ताव को ठुकरा देती हैं कि चलकर 'बाबूजी' को देख आया जाय। वे दृढ़तापूर्वक मना कर देती हैं। उनके दृढ़तापूर्वक मना कर देने में आत्मसम्मान और स्वाभिमान का भाव है।

'देवा की माँ' कहानी में जिस वातावरण को रचा गया है वह पूरा परिवेश अपने समग्र चरित्र में ग्रामीण एवं कस्बाई है। लोगों के पास पर्याप्त समय है, दूसरों के दुःख दर्द में परपीड़क की भूमिका में ही सही शामिल हो जाने की स्थितियाँ हैं। कहने का आशय है कि 'देवा की माँ' कहानी में देवा की माँ का निस्संग व्यवहार पूरे वातावरण में एक अजीब और दुर्भेद स्थितियाँ निर्मित करता है जिससे कहानी का प्रभाव कचोटता सा प्रतीत होता है। कमलेश्वर की यह खूबी है कि वे व्यवहार और संवादों से परिवेश को समग्रता में रच देते हैं। 'नौकरी पेशा' (1955) की शुरूआत ही इस सूचना के साथ होता है– ''गाँव से उखड़े हुए लोगों को कस्बा पनाह देता है। यहाँ की जिन्दगी गाँव की आबादी को चुम्बक की तरह खींचती है।''[28] 'नौकरी पेशा' के राधेलाल बहुत दिलचस्प व्यक्तित्व के स्वामी हैं। उन्हें 'बाबू' कहे जाने से अति प्रसन्नता मिलती है। ऐसे राधेलाल जब मुंशी राम भरोसे को कठिन स्थितियों में डाल देते हैं और शुद्धता पर उतर आते हैं तो उनका अवसरवादी मध्यवर्गी चरित्र उभर आता है। मुंशी राधेलाल ऐसे समय मुख्तार के यहाँ पहुँचते हैं जब राम भरोसे की अरथी उठने वाली थी जब उन्हें पता चलता है कि राम भरोसे ने मुख्तार से उनके नाम की सिफारिश की है तो ''बाबू राधे लाल पसीने में नहा गए थे, हतबुद्ध.......आँख एकदम खुश्क थी, जैसे पथरा गई हों।

'एक अश्लील कहानी' (1958) कस्बाई एवं मध्यवर्गीय मानसिकता की एक प्रमुख प्रवृत्ति सेक्स और देह के प्रति दुर्निवार आकर्षण तथा उसकी विडम्बना का चित्रण करती है। कई अर्थों में यह कहानी नयी कहानी के प्रमुख हस्ताक्षर राजेन्द्र यादव की कहानी 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' की याद दिलाती है। 'एक अश्लील कहानी' का चन्द्रनाथ इसी मध्यवर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। चन्द्रनाथ अपने शहरी काम छोड़कर कुन्ती को निर्वस्त्र होते देखता रहता है और ऊल–जलूल ख्वाब बुनता रहता है। कहानी है तो महानगर की लेकिन परिवेश कस्बाई है– ''इस खिड़की से उसके घर का नक्शा ऐसा दिखाई देता है जैसा किसी सुरंग में बसे मकान के कटे हुए हिस्से

दिखाई दे रहे हों। यहाँ से इन ऊपर वाले कमरों के अलावा नीचे का गुसलखाना, आँगन का थोड़ा सा भाग, तीन–चौथाई बरामदा और बरामदे के भीतर वाले कमरे का वह हिस्सा दिखाई पड़ता है जिसमें श्रृंगारमेज रखी हुई है।''[29] एक प्रतिनिधि मध्यवर्गीय चरित्र की तरह चन्द्रनाथ का स्पष्ट मानना है कि कुन्ती सरीखी औरतों के लिए वासना और ऐश्वर्य ही सब कुछ है। वह कहता है– ''मुझे ऐसी औरतों से चिढ़ हैं, ये खोखली हैं, इन्हें दुनिया में सिर्फ आदमी की बाँहें चाहिए। मरी हुई आत्माओं की ये लाशें बदबू करती हैं, इन्होंने नौजवानों को रास्तों से उतार कर गंदी खाइयों में फेक दिया है–हताश और भटकते हुए आदमियों में बचे–खुचे आदर्श और महत्वाकांक्षाएँ तक इन सड़ी हुई औरतों ने छीन ली हैं, उन्हें गुमराह किया है।......रंगे हुए नाखून, पुते हुए होंठ, खुले हुए पेट और आँख में काजल की लकीरें सिर्फ इस बात का बुलावा है कि इन्हें श्रद्धा की नहीं, वासना की नजर से देखो। और आप मुझसे नैतिकता की बात करते हैं।''[30] लेकिन वही चन्द्रनाथ कुन्ती के लिए बुरी तरह आसक्त है। वह कहता भी है– ''मैं इस औरत को लेकर भाग जाऊँगा।''[31] खयालों और नैतिकता की दुनिया के कथापात्र निर्णय–अनिर्णय के बीच जूझते रहते हैं। कस्बाई नैतिक अवधारणाएँ इन्हें रोकती भी हैं और प्रवृत्त भी करती हैं। चूंकि वर्जना का भाव प्रबल रहता है और निर्णय–अनिर्णय की स्थिति में यह प्रवृत्ति भी समाहित है कि कस्बाई पात्र बड़े और क्रान्तिकारी निर्णय नहीं ले सकते, चन्द्रनाथ कुन्ती को आलम्बन देने और अपनाकर सगर्व लिवा जाने के बजाय गिड़–गिड़ाने लगता है। वह कुन्ती को आवरणहीन देख विचलित हो जाता है तथा माँ कहकर सम्बोधित करता है– ''माँ तुझे अपने बेटे की कसम। ढक ले माँ.......''और कोई रिश्ता उसकी समझ में नहीं आया था। यही तो आखिरी रिश्ता रह जाता है जिससे गैर भी अपना हो जाता है और उस दरी से ढँक कर उसने कुन्ती को गठरी की तरह उठाकर दरवाजे के भीतर लुढ़का दिया।''[32] वह इस घटना के बाद बुरी तरह विचलित हो जाता है और कमरा बदल देने की बात करता रहता है। 'एक अश्लील कहानी' की प्रेरणा पर धनंजय वर्मा ने लिखा है– ''इलाहाबाद में एक दोपहर घर लौटते हुए उसने एक नंगी जवान औरत को चार आदमियों के बीच घिरे और चिल्लाते देखा तो उसकी चेतना एक गहरा नैतिक दबाव अनुभव करने लगी। यह दबाव कई वर्षों तक उसकी चेतना पर छाया रहा– तब तक, जब तक कि वह 'एक अश्लील कहानी' लिखकर उससे उऋण न हो गया।''[33]

'कस्बे का आदमी' (1958) इस अर्थ में विशिष्ट है कि शीर्षक के अतिरिक्त कथ्य और शिल्प भी कस्बाई है। कस्बे का आदमी छोटे महाराज जीवन के विविध अनुभवों से गुजर चुके हैं। जीवन जीने की मजबूरी उनमें बेचारगी और दीनता भर देती है किन्तु अवसर पाते ही वे भी शोषक की भूमिका में आ जाते हैं। तोताराम को वे इसी प्रकार प्राप्त करते हैं। उनका विश्वास है कि मरते समय अगर 'राम नाम' सुन लिया जाय तो बैकुण्ठ मिल जाता है। ''छोटे महाराज ने स्वयं तो नहीं पढ़ा था, पर रामलीला आदि में सुनने के कारण यह उनका पक्का विश्वास था कि अन्तिम काल में यदि राम का नाम कानों में पड़ जाए तो मुक्ति मिल जाती है। पता नहीं, उनके अंतिम क्षणों में भी संतू तोते की वाणी फूटी थी या नहीं।''[34] डॉ0 रामदरश मिश्र ने लिखा है,– ''कस्बे का आदमी, कस्बे के एक आदमी के छोटे–मोटे अन्तर्विरोधों के साथ उसकी सहृदयता और संस्कार को अंकित करने वाली कहानी है। तोते के प्रति अटूट प्यार और अपनी असहायता में उसके प्रति पीड़ा बोध को लेकर जीने वाले छोटे महाराज को लेखक ने एक जाने–पहचाने परिवेश में व्याप्त कर दिया है।''[35] स्पष्ट है कि यह जाना पहचाना परिवेश कस्बाई है जिसके अंकन में कमलेश्वर को सिद्धहस्तता मिली है।

नीली झील (1962) गहरे रोमान की कहानी है। नीली झील बस्ती के बहुत नजदीक है जहाँ से महेसा का प्रेम व्यक्ति से शुरू होकर 'सर्व' तक व्याप्त हो जाता है। महेसा के प्रेम का यह विस्तार किसी छल–छद्म और कपट का मुहताज नहीं रहता। वह झील तक जाने वाली सड़क बनाते–बनाते पारबती के प्रेम में पड़ जाता है और बिना किसी की परवाह किये शादी कर लेता है। यह कहानी कमलेश्वर की महत्त्वपूर्ण कहानियों में से एक है। धनन्जय वर्मा लिखते हैं– ''संवेदना के कई स्तरों और धरातलों पर मुक्त प्रवाह के कारण 'नीली' झील' विशेष प्रसिद्ध हुई।

निष्कर्षतः कहा जास कता है कि कमलेश्वर का समग्र लेखन अनुभूति की प्रामाणिकता से अनिवार्यतया जुड़ा हुआ है। उनकी कई कहानियों पर फार्मूलाबद्ध होने का आरोप लगता रहा है। वे स्वयं भी इसके उदाहरण प्रस्तुत करते रहे हैं। दुष्यंत कुमार लिखते हैं– ''मन्नू भण्डारी द्वारा संपादित 'नई कहानियाँ' के विशेषांक में उसकी कहानी प्राप्त करने के लिए जब यादव (राजेन्द्र यादव) ने उसे बाकायदा घेर ही लिया तो वह कलम लेकर बैठ गया और बोला– ''अच्छा, तुम शेव करो, मैं कहानी शुरू करता हूँ।'' और उसने कहानी शुरू कर दी। राजेन्द्र यादव ने शेव का सामान रखा तो वह बोला– ''राजेन्द्र देख, नायिका दरवाजे पर आ गई।'' यादव ने जब तक शेव का पानी गरम किया, वह बोला– ''देख, अब वातावरण डाल रहा हूँ।'' और उसने वातावरण डाल दिया। यादव ने शेव समाप्त किया तो वह बोला– ''अब एक स्थिति समाप्त हो गई।''

आशय यह कि कतिपय कहानियों में उनका फार्मूलाबद्ध लेखन उभर कर आया है और परीक्षण करने पर पता चलता है कि ऐसी कहानियों की संख्या कम नहीं है। नयी कहानी आन्दोलन को समाप्त कर 'समांतर कहानी' शुरू करने का कमलेश्वर का प्रयास संभवतः इसी का परिणाम है क्योंकि उनके लेखन का तरीका विशिष्ट है। वे निभृत एकान्त में लिखना पसंद करते हैं और वह भी तब जब मानसिक, आर्थिक अथवा वैचारिक दबाव में होते हैं।

कमलेश्वर नयी कहानी आन्दोलन के आखिरी महारथी थे। उनकी कहानियाँ नयी कहानी आन्दोलन की प्रतिनिधि विशेषताओं का स्रोत हैं। इनमें अनुभूति की प्रामाणिकता का बयान दर्ज है और उनका परिवेश कतई बाहरी नहीं है अपितु वह जीवन्त है और इसी अर्थ में वह भोगे हुए यथार्थ का आख्यान है।

---

[1]. सिन्हा डॉ0 सुरेश, नयी कहानी की मूल संवेदना,भारतीय गन्थ निकेतन,दिल्ली–1993, पृष्ठ–107
[2]. कमलेश्वर, भूमिका, मेरी प्रिय कहानियाँ,राजपाल एण्ड सन्सएदिल्ली 2001
[3]. कमलेश्वर, भूमिका, मेरी प्रिय कहानियाँ,राजपाल एण्ड सन्सएदिल्ली 2001
[4]. मदान इन्द्रनाथ, हिन्दी कहानी परिचय और परख, पृष्ठ–233
[5]. सिंह मधुकर(संपा0),कमलेश्वर, पृष्ठ 148
[6]. सिंह मधुकर(संपा0),कमलेश्वर,पृष्ठ 27–28
[7]. कमलेश्वर, समग्र कहानियाँ, पृष्ठ 25
[8]. कमलेश्वर, समग्र कहानियाँ, पृष्ठ 27
[9]. कमलेश्वर, समग्र कहानियाँ, पृष्ठ 27–28
[10]. कमलेश्वर, समग्र कहानियाँ, पृष्ठ 43
[11]. कमलेश्वर, समग्र कहानियाँ, पृष्ठ 44

[12]. सिंह मधुकर(संपा0),कमलेश्वर,पृष्ठ 144
[13]. कमलेश्वर, समग्र कहानियाँ, पृष्ठ 57
[14]. कमलेश्वर, समग्र कहानियाँ, पृष्ठ 58
[15]. कमलेश्वर, समग्र कहानियाँ, पृष्ठ 58
[16]. सिंह मधुकर(संपा0),कमलेश्वर,पृष्ठ 108
[17]. सिंह मधुकर(संपा0),कमलेश्वर,पृष्ठ 108
[18]. कमलेश्वर, समग्र कहानियाँ, पृष्ठ 83
[19]. कमलेश्वर, समग्र कहानियाँ, पृष्ठ 86
[20]. कमलेश्वर, समग्र कहानियाँ, पृष्ठ 86
[21]. कमलेश्वर, समग्र कहानियाँ, पृष्ठ 125
[22]. कमलेश्वर, समग्र कहानियाँ, पृष्ठ 126–127
[23]. कमलेश्वर, समग्र कहानियाँ, पृष्ठ 128
[24]. कमलेश्वर, समग्र कहानियाँ, पृष्ठ 128
[25]. कमलेश्वर, समग्र कहानियाँ, पृष्ठ 130
[26]. कमलेश्वर, समग्र कहानियाँ, पृष्ठ 131
[27]. कमलेश्वर, समग्र कहानियाँ, पृष्ठ 160
[28]. कमलेश्वर, समग्र कहानियाँ, पृष्ठ 162
[29]. कमलेश्वर, समग्र कहानियाँ, पृष्ठ 221
[30]. कमलेश्वर, समग्र कहानियाँ, पृष्ठ 223
[31]. कमलेश्वर, समग्र कहानियाँ, पृष्ठ 226
[32]. कमलेश्वर, समग्र कहानियाँ, पृष्ठ 230
[33]. सिंह मधुकर(संपा0),कमलेश्वर,, कमलेश्वर, पृष्ठ 91
[34]. कमलेश्वर, समग्र कहानियाँ, पृष्ठ 235
[35]. सिंह मधुकर(संपा0),कमलेश्वर, पृष्ठ 126